Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
Vol. 3, No. 1, September - October 2025

चुनावों में मुफ्त योजनाओं की राजनीति: लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ

डॉ. रामनाथ शर्मा

राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

सार

भारतीय चुनावी राजनीति में मुफ्त योजनाओं (फ्रीबीज) का बढ़ता चलन लोकतंत्र के समक्ष एक गंभीर आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक चुनौती बन गया है। राजनीतिक दल चुनाव जीतने के लिए बिना सोचे-समझे–मुफ्त बिजली, नकद हस्तांतरण, सिलेंडर, घरेलू सामान– जैसे वादे कर रहे हैं, जिससे राज्यों का राजकोषीय घाटा बढ़ रहा है, पूँजीगत व्यय घट रहा है, और कर्ज का बोझ चिंताजनक स्तर पर पहुँच गया है। आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 के अनुसार, राज्यों द्वारा मुफ्त योजनाओं पर खर्च पाँच गुना बढ़कर 1.7 लाख करोड़ रुपये हो गया है; बिहार जैसे राज्यों का राजकोषीय घाटा 6 प्रतिशत तक पहुँच गया है, और 21 राज्य केंद्र द्वारा निर्धारित 3 प्रतिशत की घाटा सीमा पार कर चुके हैं। इस प्रतिस्पर्धी लोकलुभावनवाद ने चुनावों को नीतिगत बहस से हटाकर तात्कालिक, दृश्यमान लाभों की नीलामी में बदल दिया है, जिससे दीर्घकालिक बुनियादी ढाँचे और मानव पूंजी के निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। सर्वोच्च न्यायालय ने चिंता जताते हुए कहा है कि कहीं हम "परजीवियों का वर्ग" तो नहीं बना रहे, और जनहित याचिकाओं में मुफ्त वादों पर रोक की माँग की गई है। हालाँकि, कल्याणकारी योजनाओं और केवल चुनावी लाभ के लिए दी जाने वाली "रेवड़ी" के बीच की रेखा धुंधली है। समाधान में सशर्त नकद हस्तांतरण, पूर्व-चुनाव अवधि में आचार संहिता को सख्त बनाना, वित्तीय प्रभाव विवरणों का खुलासा अनिवार्य करना, और मतदाताओं में दीर्घकालिक दृष्टि से सोचने की जागरूकता पैदा करना शामिल है। तब तक, फ्रीबी राजनीति लोकतंत्र की नींव और विकासशील भारत के भविष्य दोनों के लिए एक गंभीर खतरा बनी हुई है।

बीज शब्द- मुफ्त योजनाएँ, फ्रीबी राजनीति, चुनावी लोकतंत्र, राजकोषीय अनुशासन, जनहितकारी राज्य, निर्वाचन आचार संहिता, सर्वोच्च न्यायालय, राज्य समाजवाद, प्रतिस्पर्धी लोकलुभावनवाद, अंतरण योजनाएँ, पूँजीगत व्यय, राजकोषीय घाटा, आर्थिक स्थिरता, नैतिकता, शासन सुधार।

प्रस्तावना: भारतीय लोकतंत्र में चुनावी वादों का अपना एक लंबा इतिहास है। परंतु पिछले एक दशक में चुनावी राजनीति का स्वरूप तेजी से बदला है। अब चुनावी मैदान में जीत का पैमाना सिर्फ विकास के मॉडल या शासन की उपलब्धियाँ नहीं रह गई हैं, बल्कि "मुफ्त" की प्रतिस्पर्धा ने एक नया आयाम ले लिया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस प्रवृत्ति को "रेवड़ी संस्कृति" का नाम दिया, जो चुनावों में बिना सोचे-समझे लिए जाने वाले वादों की ओर इशारा करता है।[1]

यह कोई नई घटना नहीं है, लेकिन इसका पैमाना, गति और राजकोषीय प्रभाव अब एक ऐसे स्तर पर पहुँच गए हैं जिसे अनदेखा करना संभव नहीं है ।[2] आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 के अनुसार, राज्यों द्वारा अनुदान और मुफ्त योजनाओं पर खर्च पाँच गुना बढ़कर 1.7 लाख करोड़ रुपये हो गया है, जो सकल घरेलू उत्पाद का 0.6 प्रतिशत है। यह केवल एक संख्यात्मक आँकड़ा नहीं है; यह विकासशील भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक का प्रतीक है।

"फ्रीबी पॉपुलिज्म" का उदय—एक नई राजनीतिक तर्कशक्ति

1. **कल्याण से मुफ्त तक का सफर:** भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) और महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) जैसी कल्याणकारी योजनाओं का एक लंबा इतिहास है। ये योजनाएँ अधिकार-आधारित हैं और गरीबों के जीवन में स्थायी बदलाव लाने का प्रयास करती हैं। लेकिन हाल के वर्षों में जिस प्रकार की योजनाओं ने जोर पकड़ा है, वह इससे भिन्न है।

राजनीतिक विश्लेषक इस नई प्रवृत्ति को "फ्रीबी पॉपुलिज्म" (फ्रीबी लोकलुभावनवाद) का नाम दे रहे हैं। यह एक ऐसी राजनीतिक तर्कशक्ति है जहाँ चुनावी प्रतिस्पर्धा तेजी से तात्कालिकता, दृश्यता और राज्य लाभों के वैयक्तिकरण के इर्द-गिर्द घूमने लगती है । अधिकार-आधारित कल्याण प्रणाली में, लाभ एक नियमित प्रक्रिया बन जाते हैं और नागरिक उन्हें अपने अधिकार के रूप में दावा करते हैं, जो अक्सर चुनावी समय से स्वतंत्र होता है। फ्रीबी लोकलुभावनवाद के तहत, लाभों को इस तरह चरणबद्ध, घोषित, प्रवर्धित और वितरित किया जाता है जिससे राजनीतिक दृश्यता अधिकतम हो। राज्य अब केवल अधिकारों का गारंटर नहीं रह जाता, वह एक दृश्यमान हितैषी बन जाता है।[3]

2. **चुनावी चक्रों से जुड़ी योजनाएँ:** इन योजनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये सीधे चुनावी चक्रों से जुड़ी होती हैं। सरकारें महीनों पहले योजनाओं की घोषणा करती हैं, लेकिन उनका लाभ या धनराशि ठीक मतदान से पहले जारी की जाती है। तकनीकी रूप से, वे आचार संहिता का पालन करती हैं, लेकिन व्यवहार में वे इसकी भावना का उल्लंघन करती हैं ।

हाल के महीनों में, चुनावी राज्यों में बैंकों के बाहर महिलाओं की लंबी कतारों की तस्वीरें आम हो गई हैं। जो बिहार में शुरू हुआ वह अब असम में दिख रहा है, जहाँ सरकार ने 2026 के विधानसभा चुनावों से ठीक पहले ओरुनोदोई योजना के तहत 40 लाख महिला लाभार्थियों को 3,600 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए।[4] अन्य राज्यों में भी चुनावी घोषणापत्रों में नियमित नकद सहायता, मुफ्त राशन और घरेलू सामान के वादे शामिल हैं।[5]

3. **प्रतिस्पर्धी लोकलुभावनवाद:** यह एक और भी बड़ी समस्या है—प्रतिस्पर्धी लोकुभावनवाद (Competitive Populism)। जब एक दल कोई योजना शुरू करता है, तो विपक्षी दल को बड़ा वादा करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। सत्तारूढ़ दल फिर उससे भी बड़ा वादा करता है, और यह सिलसिला चलता रहता है। इससे प्रो-फ्लिगेसी (प्रोफ्लिगेसी) की मंजिल ऊपर उठ जाती है । एनालिस्ट इस बात पर सहमत हैं कि फ्रीबीज़ ने स्टेट फाइनेंस में पॉपुलिज्म को एम्बेड कर दिया है ।[6]

TAKSHASHILA INSTITUTION के एक ब्लॉग के अनुसार, "इन योजनाओं की अक्षमताओं के बावजूद फ्रीबीज एक चुनावी प्रवृत्ति को आकार दे रहे हैं। जैसे-जैसे भारत उच्च आर्थिक विकास की तलाश में है, यह फ्रीबी पारिस्थितिकी तंत्र में फँसता जा रहा है, क्योंकि फ्रीबीज को राजनीतिक रूप से वापस लेना अक्सर मुश्किल होता है" । मतदाता अक्सर विकास की तुलना में तात्कालिक, दृश्यमान लाभों पर अधिक प्रतिक्रिया देते हैं।[7]

आर्थिक परिणाम—राजकोषीय संकट की ओर बढ़ते कदम:

1. **चिंताजनक आँकड़े-** चुनावी फ्रीबीज के सबसे गंभीर परिणाम आर्थिक हैं। आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 के अनुसार, राज्यों का संयुक्त राजकोषीय घाटा वित्त वर्ष 2022 में जीडीपी के 2.6 प्रतिशत से बढ़कर वित्त वर्ष 2025 में 3.2 प्रतिशत हो गया है, और राजस्व घाटा भी बढ़ा है, जो राज्य के वित्त पर बढ़ते दबाव को दर्शाता है ।[8] 62 प्रतिशत राज्य राजस्व पहले से ही वेतन, पेंशन, ब्याज भुगतान और सब्सिडी में बंद है, जिससे विकासात्मक गतिविधियों के लिए मुश्किल से एक-तिहाई बचता है ।

बिहार इसका एक चरम उदाहरण है। 2025 के विधानसभा चुनावों में, एनडीए की जीत का श्रेय महिलाओं को 10,000 रुपये के नकद अनुदान को दिया गया । लेकिन इसकी कीमत चुकानी पड़ी। एमके ग्लोबल के अनुसार, बिहार का राजकोषीय घाटा जीडीपी के 6 प्रतिशत तक पहुँच गया था, और चुनावी योजनाओं पर खर्च 33,000 करोड़ रुपये से अधिक था।[9] विशेष रूप से, 12 राज्यों ने वित्त वर्ष 2025-26 के बजट में महिलाओं के लिए बिना शर्त नकद हस्तांतरण पर 1,68,040 करोड़ रुपये का बजट रखा था, और बाद के विश्लेषणों से पता चला कि इनमें से छह राज्यों ने राजस्व घाटे का बजट रखा था।[10] संयोग से, 10 प्रमुख राज्य चुनावों (2023-25) में लगभग 68,000 करोड़ रुपये खर्च किए गए ।

2. **पूँजीगत व्यय का दमन और कर्ज का बोझ-** फ्रीबीज का सबसे घातक प्रभाव यह है कि यह पूँजीगत व्यय (कैपिटल एक्सपेंडिचर) को दबा देता है। राज्य सड़कों, पुलों, अस्पतालों और स्कूलों जैसी संपत्तियों के निर्माण के बजाय उपभोग व्यय पर अधिक खर्च करने लगते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने चेतावनी दी है कि कई राज्य संपत्ति सृजन के लिए नहीं, बल्कि उपभोग के लिए उधार ले रहे हैं ।[11]

बिहार में, 2025-26 के बजट में केवल 13.7 प्रतिशत धनराशि पूँजीगत व्यय के लिए आवंटित की गई थी, जबकि 85.7 प्रतिशत राजस्व व्यय था । उत्तर प्रदेश में यह 21.8 प्रतिशत था । राज्यों का संयुक्त कर्ज 2014 में 17.57 लाख करोड़ रुपये से तिगुना होकर 2023 में 59.60 लाख करोड़ रुपये हो गया है ।[12] पंजाब, केरल, पश्चिम बंगाल और राजस्थान जैसे राज्यों में कर्ज का स्तर जीएसडीपी के 38-46 प्रतिशत के बीच है ।

3. **छिपी हुई देनदारियाँ-** वास्तविक तस्वीर तो और भी भयावह है क्योंकि कई राज्य "ऑफ-बजट बोर्रोविंग्स" (गुप्त उधारी) का सहारा लेते हैं। वे बिजली उपयोगिताओं, सिंचाई निगमों और परिवहन एजेंसियों के माध्यम से उधार लेते हैं, जिससे देनदारियाँ बैलेंस शीट से बाहर रह जाती हैं। आरबीआई ने अनुमान लगाया है कि इस तरह का छिपा हुआ कर्ज वास्तविक राजकोषीय घाटे में 0.5 से 1 प्रतिशत अंक जोड़ सकता है ।[13] अर्थशास्त्री रजनी सिन्हा के अनुसार, 19 राज्य अब 30 प्रतिशत के कर्ज-से-जीएसडीपी स्तर को पार कर चुके हैं । प्रधानमंत्री मोदी की केंद्र सरकार ने राज्यों के लिए राजकोषीय घाटे की सीमा 3 प्रतिशत निर्धारित की है। लेकिन अब यह माना जाने लगा है कि यह 3 प्रतिशत छत नहीं, बल्कि फर्श बन गई है । 29 राज्यों में से 21 पहले ही इस सीमा को पार कर चुके हैं ।[14]

लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ और नैतिक दुविधाएँ

1. **राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का संकुचन-** फ्रीबी राजनीति सिर्फ आर्थिक नहीं, बल्कि राजनीतिक और नैतिक रूप से भी खतरनाक है। जब लाभ की मात्रा और समय चुनावों का फैसला करने लगते हैं, तो वास्तविक राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के लिए जगह कम हो जाती है। चुनाव नीति बहस के मंच से घटकर वितरण क्षमता की प्रतियोगिता बन जाते हैं । मतदाता सरकारों को उनके दीर्घकालिक दृष्टिकोण के बजाय तात्कालिक, मूर्त अंतरणों के आधार पर आंकने लगते हैं।[15] यदि लोकतंत्र लगातार दीर्घकालिक नीतियों पर अल्पकालिक लाभ को प्राथमिकता देता है, तो यह अपनी ही नींव को कमजोर करने का जोखिम उठाता है।

2. **"परजीवियों का वर्ग": सुप्रीम कोर्ट की चिंता-** भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रवृत्ति पर कड़ी चिंता व्यक्त की है। फरवरी 2025 में, न्यायमूर्ति बी.आर. गवई और न्यायमूर्ति अगस्टीन जॉर्ज मसीह की पीठ ने

फ्रीबीज की आलोचना करते हुए कहा, "उन्हें राष्ट्रीय मुख्यधारा में लाने और राष्ट्र के विकास में योगदान करने के बजाय, क्या हम एक परजीवियों का वर्ग नहीं बना रहे हैं?" । न्यायमूर्ति गवई टिप्पणी की, "दुर्भाग्य से, इन फ्रीबीज के कारण, लोग काम करने को तैयार नहीं हैं। उन्हें मुफ्त राशन मिल रहा है, उन्हें बिना काम किए पैसा मिल रहा है" ।[16]

पीठ ने यह भी सुझाव दिया कि स्थिति को संतुलित किया जाना चाहिए। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि वह सामान्य कल्याण (जैसे कि शिक्षा या हाशिए के समूहों के लिए सहायता) का विरोध नहीं करता है, लेकिन संपन्न लोगों सहित सभी को अंधाधुंध वितरण उचित नहीं है ।

3. **चुनावी अखंडता पर प्रश्न-** फ्रीबीज चुनावी अखंडता को भी चुनौती देते हैं। चुनाव आयोग ने स्वीकार किया है कि चुनाव-पूर्व फ्रीबीज मतदाताओं की समानता को चुनौती देते हैं और चुनावी निष्पक्षता को विकृत करते हैं । सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका दायर की गई है, जिसमें "तर्कहीन फ्रीबीज" पर प्रतिबंध लगाने की माँग की गई है । याचिका का दावा है कि फ्रीबीज सार्वजनिक धन से चुनावी रिश्वत के समान है, जो संविधान के तहत एक भ्रष्ट आचरण है । इसने चेतावनी दी है कि देश को "नीलामी घर" में बदलने का जोखिम है, जहाँ वोट भौतिक प्रलोभनों के बदले खरीदे जाते हैं।[17]

क्या फर्क करना मुश्किल है? कल्याण बनाम फ्रीबी

1. **यह सवालों को खड़ा करता है-** राजनीतिक दल योजनाओं को कल्याणकारी बताते हैं, जबकि विपक्ष उन्हें "रेवड़ी" कहता है। दरअसल, दोनों के बीच की रेखा बहुत धुंधली है। कल्याण का उद्देश्य क्षमता निर्माण (कैपेबिलिटी बिल्डिंग) है और इसके दीर्घकालिक सामाजिक लाभ होते हैं । उदाहरण के लिए, मनरेगा रोजगार सृजित करता है, सार्वजनिक स्वास्थ्य बीमा अस्पताल जाने को प्रोत्साहित करता है। जबकि, फ्रीबीज का उद्देश्य राजनीतिक लाभ होता है। मुफ्त बिजली, ऋण माफी या चुनाव-पूर्व नकद हस्तांतरण इसके उदाहरण हैं ।[18]

लेकिन समस्या यह है कि कल्याण को भी अक्सर चुनावी लाभ के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। पीएम-किसान जैसी केंद्र सरकार की योजनाएँ, जो किसानों को नकद हस्तांतरण प्रदान करती हैं, उनकी आलोचना चुनावी के रूप में की जाती है। आम आदमी पार्टी (आप) द्वारा दिल्ली में लागू की गई मुफ्त बिजली और पानी की योजनाओं ने न केवल चुनाव जीतने में मदद की, बल्कि उनकी बार-बार आलोचना भी हुई।

2. **क्या फ्रीबीज कभी जायज हो सकते हैं?-** विश्व बैंक के एक अध्ययन (2021) के अनुसार, नकद हस्तांतरण अल्पकालिक कठिनाइयों को कम करने में तो सहायक होते हैं, लेकिन उत्पादकता या रोजगार पर उनका सीमित दीर्घकालिक प्रभाव होता है । लेकिन अर्थशास्त्री जीन ड्रेज का तर्क है कि गरीबों को लाभ पहुँचाने के लिए ये हस्तांतरण आवश्यक हैं, और इन्हें चुनावों के दौरान निकालना ही एकमात्र तरीका है ।[19]

एनआईटीआई आयोग के कार्यक्रम निदेशक प्रवाकर साहू ने इस गतिरोध को स्पष्ट किया – "प्रतिस्पर्धी लोकुभावनवाद" ने राज्यों को एक ऐसी स्थिति में डाल दिया है जहाँ वे राजकोषीय स्वास्थ्य को नजरअंदाज कर रहे हैं और जीतने पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं । उन्होंने चेतावनी दी कि यदि वे खुद को एक साथ नहीं खींचते हैं तो उनके दीर्घकालिक निहितार्थ होंगे ।[20]

सुधार की दिशा—संभावित समाधान

1. **सशर्तता और लक्षितीकरण पर जोर-** फ्रीबीज के नकारात्मक प्रभावों को कम करने का एक तरीका "शर्तों" (कंडीशनलिटी) को लागू करना है। आर्थिक सर्वेक्षण 2025-26 ब्राजील के बोल्सा फ़ामिलिया कार्यक्रम जैसे मॉडलों का हवाला देता है, जहाँ हस्तांतरण बच्चों को स्कूल भेजने या टीकाकरण कराने जैसी शर्तों से जुड़े होते हैं । ये स्थिति-ग्रस्त हस्तांतरण (कंडीशनल कैश ट्रांसफर) सुनिश्चित करते हैं कि धन केवल उपभोग में न जाए, बल्कि मानव पूंजी में निवेश करे। इसके अलावा, हस्तांतरण तक पहुँच को

सीमित करना, जिससे केवल जरूरतमंद (सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित, एसईसीसी डेटा के माध्यम से पहचाने गए) लाभान्वित होते हैं, उचित है ।[21]

2. **वित्तीय जवाबदेही-** एनआईटीआई आयोग ने फ्रीबीज पर खर्च की निगरानी और सीमा लगाने के लिए संस्थागत सुरक्षा उपायों का आह्वान किया है । आरबीआई और वित्त मंत्रालय ने भी राज्यों से चेतावनी दी है कि वे अपने बजट को सुदृढ़ करें और उपभोग पर उधार लेना बंद करें । एक महत्वपूर्ण सुझाव सुप्रीम कोर्ट में लंबित जनहित याचिका से आया है, जिसमें मांग की गई है कि राजनीतिक दलों को अपने वादों के "वित्तीय प्रभाव विवरण" का खुलासा करने के लिए मजबूर किया जाए। मतदाताओं को यह जानने का अधिकार है कि वादे कैसे पूरे किए जाएंगे और उनका भुगतान कौन करेगा।

3. **चुनाव आयोग और आचार संहिता में सुधार-** एक और क्षेत्र चुनाव आयोग (ईसी) की भूमिका में सुधार करना है। वर्तमान में, आचार संहिता (एमसीसी) केवल चुनावों की घोषणा के बाद ही लागू होती है। इससे पहले, सरकारें योजनाओं की घोषणा महीनों पहले कर सकती हैं और फिर मतदान से ठीक पहले लाभ जारी कर सकती हैं । ईसी के पूर्व महासचिव पी.डी.टी. आचार्य के अनुसार, "एमसीसी की घोषणा के बाद ईसी की शक्तियाँ पर्याप्त हैं। उससे पहले, इस क्षेत्र में ईसी की क्षमता सीमित है" ।

संभावित सुधारों में 'पूर्व-चुनाव अवधि' के लिए नियमों का विस्तार करना या जैसे ही किसी राज्य में चुनाव की तारीखें निर्धारित की जाती हैं, वैसे ही सरकारी वित्त पोषित योजनाओं पर रोक लगाने के लिए कानून बनाना शामिल हो सकता है।

4. **न्यायिक हस्तक्षेप की सीमाएँ-** सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले पर सक्रिय रुख अपनाया है, लेकिन इसकी सीमाएँ हैं। न्यायालय ने पारंपरिक रूप से कल्याणकारी नीतियों के मामलों में न्यायिक संयम का पालन किया है, यह मानते हुए कि ये निर्वाचित सरकारों के निर्णय हैं । वरिष्ठ अधिवक्ता आशीष कुलश्रेष्ठ के अनुसार, "न्यायालय इस नीति की बुद्धिमत्ता का आकलन करने से बचते हैं। यदि वे बहुत अधिक हस्तक्षेप करते हैं, तो वे विधायिका के नीति क्षेत्र में प्रवेश करने का जोखिम उठाते हैं" ।[22]

निष्कर्ष: चुनावों में मुफ्त योजनाओं की राजनीति भारतीय लोकतंत्र के समक्ष एक गंभीर और बहुआयामी चुनौती खड़ी करती है। इसके आर्थिक परिणाम निर्विवाद हैं—राजकोषीय घाटा बढ़ रहा है, पूँजीगत व्यय दब रहा है, और राज्यों का कर्ज चिंताजनक स्तर पर पहुँच रहा है। इसकी राजनीतिक कीमत भी कम नहीं है—चुनाव नीतिगत बहस के बजाय वितरण क्षमता की प्रतियोगिता बनते जा रहे हैं, और राजनीतिक दल दीर्घकालिक योजनाओं के बजाय तात्कालिक लाभों पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। इसके नैतिक आयाम भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं—अंधाधुंध वितरण एक परजीवी वर्ग का निर्माण कर सकता है और काम करने की प्रेरणा को कम कर सकता है।

लेकिन हमें यह भी याद रखना होगा कि भारत एक कल्याणकारी राज्य है। संविधान के निर्देशक सिद्धांत राज्य को सामाजिक और आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देने और असमानता को कम करने का निर्देश देते हैं। कई योजनाएँ, जिनकी आलोचना फ्रीबीज के रूप में की जाती है, वास्तव में सामाजिक न्याय के उपकरण हैं । चुनौती कल्याण को समाप्त करना नहीं है, बल्कि कल्याण और लोकलुभावनवाद के बीच एक स्पष्ट रेखा खींचना है।

फ्रीबीज ने निस्संदेह कुछ राज्यों में चुनाव जीतने में मदद की है, जैसा कि महाराष्ट्र में 'लाडकी बहिन', मध्य प्रदेश में 'लाडली बहना' और बिहार में महिला नकद हस्तांतरण ने दिखाया । लेकिन जैसा कि बिहार का उदाहरण दिखाता है, ये योजनाएँ एक भयावह राजकोषीय कीमत चुकाती हैं। ऐसा लगता है कि राज्यों के राजकोषीय स्वास्थ्य की कीमत पर एक प्रतिस्पर्धी लोकलुभावनवाद का मंच तैयार हो गया है, जो एक विकासशील राष्ट्र के रूप में भारत की क्षमता को खतरे में डाल रहा है। जैसा कि बीबीसी (2025) ने सही ढंग से कहा, "भारतीय चुनावों पर अल्पकालिक, चुनाव-संचालित फ्रीबी अर्थशास्त्र का प्रभुत्व बढ़ रहा है, जिसे राज्य वहन करने में असमर्थ हैं"।

आगे का रास्ता सरल नहीं है। इसके लिए संस्थागत सुधारों, राजनीतिक इच्छाशक्ति और जन जागरूकता के संयोजन की आवश्यकता होगी। मतदाताओं को अल्पकालिक लाभों से परे देखने और दीर्घकालिक परिणामों पर विचार करने की आवश्यकता है। राजनीतिक दलों को जीत के लिए राजकोषीय स्थिरता का त्याग करने के बजाय प्रतिस्पर्धा के स्वस्थ तरीके खोजने होंगे। और संस्थाओं को धन खर्च करने के तरीके में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने की आवश्यकता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि राज्य संसाधनों का उपयोग उनके भविष्य के निर्माण के लिए किया जाता है, न कि केवल अगले चुनाव तक टिकने के लिए।

संदर्भ सूची (References)

1. टाइम्स ऑफ इंडिया. (2025, 7 नवंबर). The dangerous allure of freebies: India's fiscal populism and its hidden cost. मुंबई: टाइम्स ऑफ इंडिया, पृ. 1
2. द इंडिया टुडे. (2026, 31 जनवरी). How freebies bled Indian economy. Economic Survey suggests a Brazilian model. नई दिल्ली: द इंडिया टुडे, पृ. 1
3. आउटलुक इंडिया. (2026, 31 मार्च). Assembly Elections 2026: Rethinking Model Code Of Conduct In The Age Of Freebie Politics. नई दिल्ली: आउटलुक इंडिया, पृ. 1-2
4. वही, पृ. 1
5. ईटीवी भारत. (2025, 12 फरवरी). 'Are We Not Creating A Class Of Parasites?': SC Deprecates Practice Of Freebies, Says People Not Willing To Work. नई दिल्ली: ईटीवी भारत, पृ. 1
6. बिजनेस स्टैंडर्ड. (2025, 4 नवंबर). Electoral freebies underpin growing drift in states' fiscal discipline. नई दिल्ली: बिजनेस स्टैंडर्ड, पृ. 1
7. TAKSHASHILA INSTITUTION. (2026, 24 फरवरी). Why India Must Move Away from Freebies! बेंगलुरु: TAKSHASHILA INSTITUTION, पृ. 1
8. द इंडिया टुडे. (2026, 31 जनवरी). How freebies bled Indian economy. Economic Survey suggests a Brazilian model. नई दिल्ली: द इंडिया टुडे, पृ.1
9. बीबीसी न्यूज़. (2025, 18 नवंबर). Bihar: India's politicians are dishing out election freebies – but are they affordable? लंदन: ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन, पृ. 1
10. TAKSHASHILA INSTITUTION. (2026, 24 फरवरी). Why India Must Move Away from Freebies! बेंगलुरु: TAKSHASHILA INSTITUTION, पृ . 1
11. आउटलुक इंडिया. (2026, 31 मार्च). Assembly Elections 2026: Rethinking Model Code Of Conduct In The Age Of Freebie Politics. नई दिल्ली: आउटलुक इंडिया, पृ.2
12. द इंडिया टुडे. (2026, 31 जनवरी). How freebies bled Indian economy. Economic Survey suggests a Brazilian model. नई दिल्ली: द इंडिया टुडे, पृ. 1
13. बिजनेस स्टैंडर्ड. (2025, 4 नवंबर). Electoral freebies underpin growing drift in states' fiscal discipline. नई दिल्ली: बिजनेस स्टैंडर्ड, पृ. 2
14. बीबीसी न्यूज़. (2025, 18 नवंबर). Bihar: India's politicians are dishing out election freebies – but are they affordable? लंदन: ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन, पृ.2
15. आउटलुक इंडिया. (2026, 31 मार्च). Assembly Elections 2026: Rethinking Model Code Of Conduct In The Age Of Freebie Politics. नई दिल्ली: आउटलुक इंडिया, पृ . 2

16. ईटीवी भारत. (2025, 12 फरवरी). 'Are We Not Creating A Class Of Parasites?': SC Deprecates Practice Of Freebies, Says People Not Willing To Work. नई दिल्ली: ईटीवी भारत, पृ. 1-2

17. ओरिस्सापोस्ट. (2026, 20 अप्रैल). SC issues notice on PIL seeking ban on irrational freebies before polls. भुवनेश्वर: ओरिस्सापोस्ट, पृ. 1

18. टाइम्स ऑफ इंडिया. (2025, 7 नवंबर). The dangerous allure of freebies: India's fiscal populism and its hidden cost. मुंबई: टाइम्स ऑफ इंडिया, पृ. 1

19. बीबीसी न्यूज़. (2025, 18 नवंबर). Bihar: India's politicians are dishing out election freebies – but are they affordable? लंदन: ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन, पृ. 1

20. न्यूज़18. (2025, 28 जनवरी). Freebies First, Development Last: How States Are Killing Growth. नई दिल्ली: न्यूज़18, पृ. 1

21. द इंडिया टुडे. (2025, 24 सितंबर). Desperate for growth, can Bihar afford freebies that stall it? नई दिल्ली: द इंडिया टुडे, पृ. 1

22. द वीक. (2026, 5 अप्रैल). Welfare or populism? How India is grappling with cost of freebies. कोच्चि: द वीक, पृ. 2-3